Toppersnotes®
Unleash the topper in you

UGC-NET

दर्शनशास्त्र

NATIONAL TESTING AGENCY (NTA)

पेपर – 2 || भाग – 4

समकालीन पाश्चात्य दर्शन व सामाजिक तथा राजनीतिक दर्शन: भारतीय

SIERRA INNOVATIONS

UGC NET - दर्शनशास्त्र

S. No.	Content	Page No.
1.	इकाई-VI समकालीन पाश्चात्य दर्शन	1-100
	• विश्लेषणात्मक एवं महाद्वीपीय दर्शन • संवृत्तिशास्त्र एवं अस्तित्ववाद • अर्थक्रियावाद • उत्तर आधुनिकतावाद	
2.	इकाई-VII सामाजिक तथा राजनीतिक दर्शन: भारतीय	101-191
	• महाभारत	101
	• कौटिल्य	108
	• कामन्दकीय	130
	• सामाजिक संस्थाए	151

इकाई VI

समकालीन पाश्चात्य दर्शन

प्राचीन ज्ञान और प्राचीन दार्शनिक के लेखन में दर्शनशास्त्र का विषय पूर्णतः बौद्धिक उद्यम रहा था। इसकी शुरूआत प्रकृति की उत्पत्ति से संबंधित मूल प्रश्नों से हुई। इन प्रश्नों पर प्राचीन यूनानी दर्शन में व्यापक विमर्श हुआ और इनके अनेक संभावित उत्तर सुझाए गए थे। परिणामस्वरूप, अनेक अन्य समस्याएं जैसे सत् की प्रकृति, ज्ञान की वैधता का स्रोत, मानवीय तर्क की सीमाएं और संभावनाएं, मानव आचरण के नियम आदि दार्शनिक विश्लेषण के विषय बन कर उभरे। पुनः इसमें अन्य विषय जैसे कि विशुद्ध गणित और प्राकृतिक विज्ञान जैसे भौतिकी, खगोलविज्ञान और जीव विज्ञान को भी सम्मिलित किया गया। समय के साथ, शैक्षिक विशेषज्ञता और विज्ञान के विशेष विषयों के तकनीकी विकास से इन विज्ञानों का विशिष्ट विषयों के रूप में विकास हो गया और ये दर्शनशास्त्र से अलग हो गए। आज दार्शनिक प्रश्न सामान्यतः विशिष्ट विज्ञानों के प्रश्नों से स्पष्ट रूप से भिन्न होते हैं और इन प्रश्नों की पहचान इस तथ्य से होती है कि ये ऐसे प्रश्न हैं जो मौलिक और गूढ़ प्रकृति के हैं और इनके परीक्षणात्मक साधनों से उत्तर नहीं दिए जा सकते हैं।

समकालीन पाश्चात्य दर्शन दर्शनशास्त्र की वह तकनीकी शब्दावली है जिसका संबंध पश्चिमी दर्शन के विशिष्ट काल से है। समकालीन दर्शन को पश्चिमी दर्शन के इतिहास के वर्तमान काल के रूप में वर्णित किया जा सकता है जिसकी शुरूआत उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में विश्लेषण दर्शन और यूरोपीय दर्शन के विकास के साथ हुई। अतः समकालिक संदर्भ में पश्चिमी दर्शन का अभिप्राय समकालीन दर्शन की दो मुख्य परंपराओं; विश्लेषण दर्शन और यूरोपीय दर्शन से है। यूरोपीय दर्शन की शुरूआत ब्रेन्टेनों, हुसर्रल और रीनेक के संवृत्तिवादी (घटना क्रिया विज्ञान) की दार्शनिक विधि के विकास पर लिखी पुस्तकों से हुई। यह विकास गोटलोब फ्रेगे और बर्टेड रसेल के दर्शन के समकालीन है जिससे आधुनिक तर्क के माध्यम से भाषा के विश्लेषण की नई दार्शनिक पद्धति का आरंभ हुआ। इसीलिए इसे विश्लेषण दर्शन कहते हैं। वे दार्शनिक जो स्वयं को विश्लेषक कहते हैं और जो स्वयं को 'यूरोपीय' कहते हैं के बीच संबंध प्रायः विरोध का रहता है लेकिन कुछ समकालिन दार्शनिक ऐसे हैं जिन्होंने यह तर्क दिया कि यह विभाजन दर्शनशास्त्र के लिए हानिकारक है और उन्होंने एक संयुक्त अभिगम का प्रयास किया।

विश्लेषण दर्शन और यूरोपीय दर्शन की इन व्यापक शाखाओं के अंतर्गत अनेक उप–विषय हैं। पश्चिमी दार्शनिकों ने दर्शन शास्त्र को विभिन्न विषयों पर कार्य करने वाले लोगों द्वारा संबोधित किए जाने वाले प्रश्नों के आधार पर अनेक प्रमुख शाखाओं में विभाजित किया है। दर्शन प्राथमिक रूप से चिन्तन पर आधारित है। इसकी परीक्षण पर भरोसा करने की प्रवृत्ति नहीं है। जबकि कुछ मामलों में दर्शन अपनी गुणवत्ता और पद्धति में विज्ञान जैसा है। कुछ विश्लेषण दार्शनिकों ने सुझाव दिया कि दार्शनिक विश्लेषण की पद्धति दार्शनिकों को प्राकृतिक विज्ञान की पद्धतियों का अनुकरण करने की अनुमति देती है। दर्शन मूलरूप से चाहे कुछ हो या उसका चाहे कोई सरोकार हो लेकिन उसकी सामान्यतः प्राकृतिक विज्ञानों से अधिक अमूर्तरूप से आगे बढ़ने की प्रवृत्ति है। यह अनुभव और परीक्षण पर इतना अधिक निर्भर नहीं करता है, और प्रौद्योगिकी में भी वैसा प्रत्यक्ष योगदान नहीं देता है जैसा अन्य विज्ञानों का है।

विश्लेषण दर्शन

विश्लेषण दर्शन दर्शनशास्त्र की उस शैली के लिए व्यापक नाम है जिसका बीसवीं शताब्दी में अंग्रेजी भाषी देशों में वर्चस्व था। इसकी शुरूआत सामान्य रूप से अंग्रेज दार्शनिकों गोटलोब फ्रेगे, बट्रैन्ड रसेल और लुडविग विटगेनस्टीन के कार्य से हुई। वे उस समय प्रभावी हेगेलादी उद्देश्यों, विशेष रूप से उसके आदर्शवाद, और उदश्यवादी दुर्बोधता से दूर हो गए और फिर तर्कशास्त्र में हुए नए विकास पर आधारित एक नए प्रकार के संप्रत्ययात्मक विश्लेषण का विकास शुरू हुआ।

समकालीन दार्शनिकों, जो अपनी पहचान विश्लेषण दार्शनिकों के रूप में करते हैं कि रूचियां, पूर्वानुमान और विधियां अत्यधिक भिन्न हैं। अपनी समकालीन अवस्था में विश्लेषण दर्शन को सामान्यतः एक विशेष शैली द्वारा

परिभाषित किया जाता है, जिसकी पहचान किसी सीमित विषय पर स्पष्ट रूप से विशिष्टता और सम्पूर्णता से होती है। माइकेल ई. रोजेन का मत है कि शब्द विश्लेषण दर्शन का निम्न अर्थ हो सकता है :

(1) दर्शन की एक ऐसी परंपरा जिसकी पहचान स्पष्टता और चर्चा के महत्व द्वारा होती है, जिसे प्रायः आधुनिक औपचारिक तर्कशास्त्र और भाषा के विश्लेषण और प्राकृतिक भाषा के लिए सम्मान के द्वारा प्राप्त किया जाता है।

(2) भाववादीयों के अनुसार, दार्शनिक सत्य विशिष्ट नहीं होते हैं और यह कि दर्शनशास्त्र का उद्देश्य विचारों की तार्किक व्याख्या करना है। इसके फलस्वरूप, अनेक विश्लेषण दार्शनिकों ने अपने प्रश्नों को प्राकृतिक विज्ञानों के साथ सतत् या उसके अधीन माना है।

(3) यह मत कि विचारों की तार्किक व्याख्या केवल दार्शनिक तर्कवाक्यों के तार्किक विश्लेषण द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। तर्कवाक्य का तार्किक रूप उसे प्रायः औपचारिक व्याकरण और तार्किक पद्धति के प्रतीकवाद का उपयोग करते हुए प्रदर्शित करने का एक ढंग है जिससे उसकी उसी प्रकार के अन्य तर्कवाक्यों से समानता प्रदर्शित की जा सके।

अपने दर्शन के शुरूआती काल में रसेल और उनके सहायक एल्फ्रेड नोर्थ व्हाइट हैड, गोटलोब फ्रेगे से अत्यधिक प्रभावित थे। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि फ्रेगे ने विधेयात्मक तर्कशास्त्र (pardicate logic) के विकास में सहायता की। हुसर्रल के अंकगणितीय दर्शनशास्त्र के विपरीत, जो यह दर्शाता है कि प्रधान अंक (cordinal number) की अवधारणा वस्तुओं को समूहित करके उनकी गिनती करने के मनोविज्ञान से हुई है। फ्रेगे ने यह दिखाने का प्रयास किया कि गणित और तर्क की अपनी स्वयं की वैधता है जो गणितज्ञों और तर्कशास्त्रियों के व्यक्तिगत निर्णयों अथवा मानसिक अवस्थाओं से स्वतंत्र है।

फ्रेगे की भांति ही, बर्टेन्ड, रसेल और एल्फ्रेड नॉर्थ व्हाइटहैड ने यह दिखाने का प्रयास किया कि गणित मौलिक तार्किक सिद्धान्तों में परिवर्तनीय है। उनकी पुस्तक प्रिन्सिपिया मैथमेटिका ने अनेक दार्शनिकों की प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र के विकास में पुनः रूचि उत्पन्न कर दी। इसके अतिरिक्त, बर्टेल रसेल ने फ्रेगे के विधेयात्मक तर्कशास्त्र को अपने प्राथमिक दार्शनिक उपकरण के रूप में अपनाया। यह एक ऐसा उपकरण था जो उनके विचार से दार्शनिक समस्याओं की अन्तर्निहित संरचना को उजागर कर सकता था।

बाद के विश्लेषण दार्शनिकों जैसे रसेल और लुडविग विटगेनस्टीन ने दार्शनिक विश्लेषण की ऐसी आदर्श भाषा निर्मित करने पर ध्यान केन्दित किया जो सामान्य भाषा, जिससे प्रायः दार्शनिकों को कष्ट होता है, की अनेकार्थकता से मुक्त हो। इस दार्शनिक चलन को आकारवाद (formalism) कहा जा सकता है। रसेल और विटगेनस्टीन ने भाषा और दार्शनिक समस्याओं को समझने का प्रयास आकारिक तर्कशास्त्र के उपयोग द्वारा उस ढंग का निरूपण करके किया जिसमें दार्शनिक कथन दिए जाते हैं। लुडविग विटगेनस्टीन ने अपनी पुस्तक, ट्रेक्टेटस लोजिको - फिलॉसोफिकस में तार्किक अणुवाद की व्यापक पद्धति का विकास किया। उन्होंने उसमें तर्क दिया कि यह जगत वास्तविक परिस्थितियों की समग्रता है और इन परिस्थितियों को आणविक तर्कवाक्यों में निहित आणुविक तथ्यों को अभिव्यक्त करके और उन्हें तार्किक प्रचालकों से जोड़कर निर्मित किया जा सकता है।

यद्यपि यूरोपीय और विश्लेषण परंपराओं की शाखाओं के बीच स्पष्ट पृथक्करण करना आसान नहीं है लेकिन हम विश्लेषण दर्शन में बताई गई प्रमुख शाखाओं का एक सर्वेक्षण करने का प्रयास करेंगे।

नीतिशास्त्र

शताब्दी के पहले अर्द्धभाग की पहचान नैतिक दर्शन की व्यापक अनदेखी और मूल्यों के प्रति अविश्वास से होती है। तार्किक भाववाद से प्रभावित होकर समकालीन विश्लेषण दार्शनिकों ने पुनः नीतिशास्त्र में दिलचस्पी लेना शुरू कर दिया। वर्तमान में समकालीन नैतिक दर्शन पर तीन विचारधाराओं का प्रभाव है : उपयोगितावाद, सद्गुण दर्शन और कांटवाद । बीसवीं शताब्दी के दूसरे अर्द्धभाग में हुआ एक अन्य प्रमुख विकास समकालीन नैतिक दर्शन की व्यवहारिक उपयोगिता में, विशेषरूप से पर्यावरणीय मुद्दों, जंतु अधिकारों के संदर्भ में, और विकासशील चिकित्सा

विज्ञान से मिली अनेक चुनौतियों में अत्यधिक दिलचस्पी होना था। विश्लेषण दर्शन के आरंभिक वर्षों में तर्क और भाषा पर मुख्य रूप से केन्दित होने के कारण, इस परंपरा में शुरूआत में नीति संबंधों के विषयों पर कम ही कुछ कहने को था। आरंभिक विश्लेषकों की व्यापक रूप से यह सोच थी कि ये विषय व्यवस्थित नहीं हैं और केवल व्यक्तिगत सोच मात्र को अभिव्यक्त करते हैं जिसके बारे में दर्शन में बहुत कम या कुछ नहीं कहा जा सकता है।

तार्किक भाववाद

रसेल और विट्गेनस्टीन का आकारवाद विएना और बर्लिन के विचारकों के एक समूह द्वारा विकसित किया गया। इन्होंने तार्किक भाववाद नामक सिद्धान्त में विएना सर्किल और बर्लिन सर्किल का गठन किया। तार्किक भाववाद ने जगत के बारे में हमारे अनुभव जनित ज्ञान को आधार प्रदान करने के लिए औपचारिक तार्किक साधनों का प्रयोग किया। रूडोल्फ कार्नेप और मॉरिज स्लिक जैसे दार्शनिकों समेत विएना सर्किल के अन्य सदस्यों का मानना था कि तर्कशास्त्र और गणित के सत्य पुनरूक्तियां हैं और विज्ञान के सत्य सत्यापित किए जाने योग्य मूल दावे। इन दावों ने अर्थपूर्ण निर्णय के समूचे जगत की रचना की है जबकि अन्य सभी कुछ व्यर्थ है। नीतिशास्त्र, सौंदर्यशास्त्र और धर्मविज्ञान के दावे भी तदनुसार छदम्-कथन सिद्ध हुए जो न तो सत्य और न ही असत्य बल्कि व्यर्थ है।
तार्किक भाववादियों ने दर्शन को प्रारूपिक रूप से बहुत सीमित भूमिका के विषय के रूप में देखा था। उनके लिए, दर्शन का संबंध विचारों के स्पष्टीकरण से था न कि अपने आप में किसी नए भिन्न विषय से। भाववादियों ने सत्यापनीयता सिद्धान्त को अपनाया, जिसके अनुसार प्रत्येक अर्थपूर्ण कथन या तो विश्लेषण द्वारा अथवा अनुभव द्वारा सत्यापित होने में सक्षम होता है। फलतः तार्किक भाववादियों द्वारा दर्शन की अनेक पारंपरिक समस्याओं, विशेष रूप से तत्वमीमांसा, को अर्थहीन कहकर अस्वीकार कर दिया गया।

उपयोगितावाद

उपयोगितावाद एक ऐसा आंदोलन था जिसमें वे लोग शामिल थे जो यह दावा करते थे कि कोई सिद्धान्त अथवा तर्कवाक्य तभी सत्य है यदि वह संतोषजनक परिणाम उत्पन्न करता है और तर्कवाक्य का अर्थ उसे स्वीकार करने के व्यवहारिक परिणामों में देखा जा सकता है और यह कि अव्यवहारिक विचारों को रद्द कर दिया जाना चाहिए। विलियम जेम्स की दृष्टि में उपयोगितावाद किसी विचार की सत्यता को परखना उसकी वैधता को सिद्ध करने के लिए अनिवार्य शर्त थी। उपयोगितावाद की शुरूआत उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में चार्ल्स सैन्डर्स पियर्स के साथ हुई । यद्यपि बीसवीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों में विलियम जेम्स, जॉन डिवी और जॉर्ज सन्तायन की पुस्तकों में इसका और विकास हुआ।

उपयोगितावादी इस मल आधारवाक्य से आगे बढे कि सिद्धान्तीकरण की मानव क्षमता बौद्धिक व्यवहार में निहित है। सिद्धान्त और व्यवहार पृथक क्षेत्र नहीं हैं, बल्कि सिद्धान्त और विशिष्टताएं जगत में अपनी राह खोजने के हमारे साधन या ढंग हैं। सिद्धान्त प्रत्यक्ष अनुभव का सार रूप है और इसे अंततः अनुभव सिद्ध होना चाहिए। अतः किसी व्यक्ति की अपने परिवेश की छानबीन उपयोगितावादी पड़ताल के लिए आधार प्रदान करती है।

आरंभ से ही, उपयोगितावादी दर्शनशास्त्र में सुधार करके उसे अपनी समझ के अनुसार वैज्ञानिक पद्धतियों के अधिक अनुरूप लाना चाहते थे। उनका तर्क था कि आदर्शवादी और यथार्थवादी दर्शन की प्रवृत्ति मानवीय ज्ञान को इस ढंग से प्रस्तुत करने की है जैसे वह कोई ऐसा ज्ञान है जिसे विज्ञान द्वारा नहीं समझा जा सकता है। अतः इन दर्शनों ने या तो कांट से प्रेरित संवृत्तिवादी घटना क्रियाविज्ञान को अथवा ज्ञान और सत्य के अनुरूपता सिद्धान्तों को अपनाया। उपयोगितावाद यह समझाने का प्रयास करता है कि जगत में किस प्रकार ज्ञाता और ज्ञात के बीच संबंध काम करता है।

राजनीतिक दर्शन

वर्तमान राजनीतिक दर्शन जॉन रॉल्स और उनकी पुस्तक ए थ्योरी ऑफ जस्टिस का काफी ऋणी है, जिसने राजनीति में उदारवाद का परिष्कृत और तर्कयुक्त बचाव प्रस्तुत किया है। हाल के दशकों में उदारवाद की आलोचना में भी वृद्धि हुई है।

राजनीतिक दर्शन के क्षेत्र में एक अन्य विकास विश्लेषणात्मक मार्क्सवाद नामक विचारधारा के उभरने के रूप में है। इस विचारधारा के श्रेष्ठ ज्ञात सदस्य ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के दार्शनिक जी.ए. कोहन है जिनकी पुस्तक कार्ल मार्क्स थ्योरी ऑफ हिस्ट्री : ए डिफेन्स को सामान्यतः इस विचारधारा की उत्पत्ति का प्रतिनिधित्व करने वाला माना जाता है। कोहन ने तार्किक और भाषाई विश्लेषण के उपकरणों का उपयोग मार्क्सवादी इतिहास की भौतिकतावादी अवधारणा की व्याख्या और उसकी प्रतिरक्षा के लिए किया।

एलसडायर मैकिनटायर और चार्ल्स टेलर जैसे साम्यवादियों ने उदारवाद की आलोचना की। यह आलोचना उदारवादी व्यक्तियों जैसे रॉल्स की प्रमुख परिकल्पनाओं को पृथक करने के लिए विश्लेषण तकनीकों का उपयोग करती है और फिर उन परिकल्पनाओं को चुनौती देती है। विशेष रूप से, साम्यवादी इस उदारवादी सोच को चुनौती देते हैं कि व्यक्ति को उस समाज से पूर्णतः स्वायत्त रूप से देखा जा सकता है जिसमें वह रहता है और पला बढ़ा है। बल्कि वे व्यक्ति की ऐसी संकल्पना को बढ़ावा देते हैं जो उसके मूल्यों, चिन्तन प्रक्रिया, और मत को निरूपित करने में समाज की भूमिका को महत्व देती

यूरोपीय दर्शन

समकालीन उपयोग में यूरोपीय दर्शन का अर्थ उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी के यूरोप में प्रचलित दार्शनिक परंपराओं से है। इस शब्द की उत्पत्ति अंग्रेजी भाषी दार्शनिकों द्वारा बीसवीं शताब्दी के दूसरे अर्द्धभाग में हुई, जिन्होंने इसे विश्लेषण आंदोलन के बाहर के विचारकों और परंपराओं के लिए उपयोगी पाया। यूरोपीय दर्शन की मुख्य शाखाएं जर्मन आदर्शवाद, संवृत्तिशास्त्र, (घटनाक्रियाविज्ञान), अस्तित्ववाद, भाष्यविज्ञान, संरचनावाद और उत्तर-संरचनावाद हैं।

यूरोपीय दर्शन का इतिहास सामान्यतः जर्मन आदर्शवाद से आरंभ माना जाता है जिसके प्रमुख दार्शनिक फिख्ते, शैलिंग और बाद में हेगेल थे। जर्मन आदर्शवाद का विकास इमेनुएल कांट के दर्शन से हुआ। यह नव जागरण की क्रांतिकारी राजनीति और रोमान्सवाद दोनों से निकट रूप से जुड़ा था। एडमुंड हुसर्रल यूरोपीय दर्शन के प्रामाणिक विद्वान रहे हैं। शब्द यूरोपीय दर्शन विश्लेषण दर्शन की भांति ही दार्शनिक मतों और अभिगमों के ऐसे व्यापक विस्तार को बताता है जिन्हें आसानी से परिभाषित नहीं किया जा सकता है। यूरोपीय दर्शन की पहचान उसके आलोचक प्रायः विश्लेषण दर्शन जैसी यथार्थता न होने के रूप में करते हैं।

शब्द यूरोपीय दर्शन की भी विश्लेषण दर्शन की भांति ही स्पष्ट परिभाषा नहीं है और इसकी पहचान पृथक दार्शनिक मतों के बीच पारिवारिक सादृश्यता मात्र से होती है। माइकल ई रोजन ने कुछ ऐसे सामान्य विषयों की पहचान की है जो प्रारूपिक रूप से यूरोपीय दर्शन की विशेषता है। ये निम्न हैं:

(1) यूरोपीय दार्शनिक सामान्यतः विज्ञानवाद अर्थात् इस मत को अस्वीकार करते हैं कि प्राकृतिक विज्ञान सभी घटनाओं को समझने का श्रेष्ठ और सबसे यथार्थ ढंग है। यूरोपीय दार्शनिक प्रायः यह तर्क देते हैं कि विज्ञान संभावित अनुभव की स्थितियों पर निर्भर करता है और यह कि वैज्ञानिक विधियां बौद्धिकता की ऐसी स्थितियों को समझने के लिए अपर्याप्त हैं।

(2) यूरोपीय दर्शन सामान्यतः अनुभव को संदर्भ, स्थान और काल, भाषा संस्कृति अथवा इतिहास द्वारा निर्धारित मानता है। अतः यूरोपीय दर्शन की प्रवृत्ति इतिहासवादी है।

(3) यूरोपीय दर्शन में दृढ़ता से माना जाता है कि सचेत मानवीय कर्म अनुभव की स्थितियों को बदल सकते हैं। अतः यूरोपीय दार्शनिकों की प्रवृत्ति सिद्धान्त और व्यवहार में अत्यधिक मेल की होती है। वह यह भी सुनिश्चित करते हैं कि उनकी दार्शनिक पड़ताल व्यक्तिगत, नैतिक अथवा राजनीतिक रूपांतरण से संबंधित हो। यह प्रवृत्ति मार्क्सवादी परंपरा में बहुत स्पष्ट है और यह अस्तित्ववाद और उत्तर–संरचनावाद में भी प्रमुख है।

(4) यूरोपीय दर्शन का अंतिम विशिष्ट गुण तत्वमीमांसा के महत्व को बताना है। प्राकृतिक विज्ञानों के विकास और सफलता को देखते हुए, यूरोपीय दार्शनिकों ने प्रायः दर्शनशास्त्र की विधि और प्रकृति को पुनः परिभाषित करने का प्रयास किया है। कुछ प्रकरणों जैसे जर्मन आदर्शवाद अथवा संवृत्तिशास्त्र (घटनाक्रिया विज्ञान) में इसकी

अभिव्यक्ति उस पारंपरिक मत की पुर्नरचना के रूप में हुई है कि दर्शन प्राथमिक रूप से एक आधारभूत प्रागानुभविक विज्ञान है। अन्य प्रकरणों जैसे शास्त्रार्थ शास्त्र, आलोचनात्मक सिद्धान्त, अथवा संरचनावाद में यह माना जाता है कि दर्शन उस क्षेत्र की पड़ताल करता है जो अपरिवर्तनीय रूप से सांस्कृतिक अथवा व्यवहारिक है। कुछ यूरोपीय दार्शनिक जैसे कर्कगार्ड, नीत्से और उत्तरकालीन हाइडेगर अथवा डेरिडा को संदेह था कि क्या दर्शन की कोई भी अवधारणा वास्तव में संगत हो सकती है।

यूरोपीय दर्शन के मुख्य उपविभाजन निम्न हैं :

जर्मन आदर्शवाद

जर्मन आदर्शवाद वह दार्शनिक आंदोलन था जो जर्मनी में अठारहवीं शताब्दी के अंतिम और उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों में उभरा था। इसका विकास इमेनुअल कांट के कार्य से हुआ और यह रोमान्सवाद और पुर्नजागरण की क्रांतिकारी राजनीति दोनों से निकट रूप से संबंधित है। जर्मन आदर्शवाद का जन्म कांट द्वारा ईश्वर की अवधारणा की निरर्थकता को प्रदर्शित करने के बाद उसकी अवधारणा को विभिन्न रूपों में बनाए रखने के लिए हुआ था। इस आंदोलन के विख्यात विचारक इमेनुअल कांट, जोहन गोटलोब, फिख्ते, फ्रेडरिक शैलिंग और जॉर्ज विल्हेम फ्रेडरिक हेगेल थे।

आदर्शवाद का दार्शनिक अर्थ यह है कि वस्तुओं में हमें जो गुण दिखाई देते हैं वे उस ढंग पर निर्भर करते हैं जैसी वे वस्तुएं अनुभूति के विषयों के रूप में हमें प्रतीत होती हैं, न कि उनके बारे में हमारे अनुभव से परे उनमें कोई गुण होते है। स्वयं में वस्तु की धारणा को क्रियाशील मन के लिए प्रकार्यों के समूह के विकल्प के रूप में समझा जाना चाहिए, ऐसे कि हम वस्तु को उस रूप में माने जैसी वह हमें दिखती है बिना उस संदर्भ पर विचार किए जिसके कारण वह हमें वैसी दिखाई देती है। अतः मस्तिष्क से स्वतंत्र किसी वस्तु के गुणों पर विचार करना आदर्शवाद के लिए असंगत है। इमेनुअल कांट को सामान्यतः जर्मन आदर्शवादियों में सबसे प्रथम माना जाता है।

संवृत्तिशास्त्र

संवृत्तिशास्त्र बीसवीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों में एडमुंड हुसर्रल और उसके अनुयायियों द्वारा जर्मनी में विकसित की गई एक दार्शनिक पद्धति है। संवृत्तिशास्त्र के लिये प्रयुक्त अंग्रेजी शब्द फिनोमिनोलोजी (Phenonenology) शब्द की उत्पत्ति यूनानी शब्द फेनोमेनन (Phenomenon) अर्थात जो दिखाई देता है और लोगोस (logos) अर्थात अध्ययन से हुई है। हुसर्रल की अवधारणा में, संवृत्तिशास्त्र का सरोकार प्राथमिक रूप से चेतना का निर्माण करने और ऐसी घटनाओं का निर्माण करने से है जो चेतना के कार्यों में दिखाई देती है, और जो क्रमबद्ध चिंतन और विश्लेषण की वस्तु है। यह चिंतन विषयी के अत्यधिक रूपांतरित दृष्टिकोण से उपजा था जो घटना को उस रूप में नहीं देखता जैसी वह स्वयं की चेतना को प्रतीत होती है बल्कि प्रत्येक की चेतना के रूप में देखता है। अतः हुसर्रल का मानना था कि संवृत्तिशास्त्र वैज्ञानिक ज्ञान समेत समस्त मानीवय ज्ञान के लिए दृढ़ आधार प्रदान कर सकता है और दर्शनशास्त्र को एक यथार्थ विज्ञान के रूप में स्थापित कर सकता है।

अपने मूलरूप में संवृत्तिशास्त्र सामान्यतः उन विषयों के वस्तुनिष्ठ अध्ययन के लिए स्थितियां निर्मित करने का प्रयास करता है जिन्हें सामान्यतः सैद्धांतिक माना जाता है : चेतना और चेतन अनुभवों जैसे निर्णय, अनुमति और भावनाओं की विषयवस्तु। संवृत्तिशास्त्र क्रमिक चिंतन के द्वारा चेतना और चेतन अनुभवों के अनिवार्य गुणों और रचनाओं के निर्धारण का प्रयास करता है।

संवृत्तिशास्त्र का एक महत्वपूर्ण घटक विषयापेक्षता (intentinality) है। विषयापेक्षता से यह तात्पर्य है कि चेतना सदैव किसी वस्तु की चेतना होती है। भले ही वह वस्तु जिसके बारे में चेतना है एक प्रत्यक्ष अनुभूति अथवा कपोल कल्पना, जिससे स्वयं विषयापेक्षता की अवधारणा को कोई लेना-देना नहीं है, क्यों न हो। चेतना की वस्तु ऐसी भौतिक वस्तु नहीं होती है जिसे अनुभूति से समझा जाए : यह कल्पना या स्मृति भी हो सकती है। चेतना की संरचनाएं जैसे अनुभूति, स्मृति, कल्पना आदि विषयापेक्षातएं कहलाती हैं।

अस्तित्ववाद

अस्तित्वाद शब्द का उपयोग उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी के अनेक दार्शनिकों के लेखन में हुआ है। ये दार्शनिक अत्यधिक सैद्धांतिक मतभेदों के उपरान्त सामान्यतः यह मानते थे कि दार्शनिक चिन्तन का केन्द्र व्यक्ति विशेष की भावनाओं, कर्मों, दायित्वों और विचारों तथा उसके अस्तित्व की स्थितियों से संबंधित होना चाहिए। 'अस्तित्ववाद', शब्द फ्रांसीसी दार्शनिक गेब्रिएल मार्शल द्वारा बीसवीं शताब्दी के पहले अर्द्धभाग में दिया गया प्रतीत होता है। इसे ऐसे दार्शनिकों के लिए भी लागू किया जा सकता है जिनके लिए अस्तित्व और विशेषरूप से मानव अस्तित्व मुख्य दार्शनिक विषय रहे थे। सोरेन कर्कगार्ड को पहला अस्तित्ववादी माना जाता है और उन्हें 'अस्तित्ववाद का जनक' कहा जाता है। वास्तव में वे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने अस्तित्व के प्रश्नों को अपने दर्शनशास्त्र में स्पष्ट रूप से सर्वोच्च प्राथमिकता दी थी।

सोरेन कर्कगार्ड ने यह माना कि अस्तित्व की बाधाओं और भटकावों जैसे निराशा, क्रोध, निरर्थकता, अकेलेपन और ऊब के होने के बावजूद अपने जीवन को अर्थ देने और जीवन को पूर्णतः मन और गंभीरता से जीने का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व स्वयं व्यक्ति का ही होता है। बाद के अस्तित्ववादी दार्शनिकों ने व्यक्ति के महत्व को भिन्न स्तरों तक बनाए रखा, कि कैसे कोई व्यक्ति सफलता अर्जित करता है, उद्देश्य पूर्ण जीवन क्या है? किन बाधाओं को दूर किया जाना चाहिए और कौन से आन्तरिक और बाह्यकारक इसमें सम्मिलित होते हैं? अनेक अस्तित्ववादियों ने पारंपरिक क्रमबद्ध अथवा शैक्षिक दर्शनशास्त्र को अत्यधिक अमूर्त और जीवन के ठोस अनुभवों से काफी दूर माना। अस्तित्ववाद एक ऐसे चलन के रूप में प्रचलित हो गया जिसमें मानव व्यक्तिकता और स्वतंत्रता के महत्व पर जोर दिया गया।

भाष्यविज्ञान/शास्त्रार्थशास्त्र

भाष्यविज्ञान व्याख्या सिद्धान्त का अध्ययन है और यह व्याख्या करने की कला अथवा व्याख्या का सिद्धान्त और व्यवहार हो सकता है। शब्द भाष्यविज्ञान के लिए अंग्रेजी शब्द हर्मोन्यूटिक्स की उत्पत्ति यूनानी शब्द हरमीनियो से हुई है जिसका अर्थ अनुवाद या व्याख्या करना है। भाष्य विज्ञान के विषय में व्याख्या पर अरस्तू की पुस्तक ऑन इन्टरप्रीटेशन में भी पढ़ा जा सकता है। यह पश्चिमी परंपरा में भाषा और तर्क के बीच संबंध के बारे में व्यापक, स्पष्ट और औपचारिक ढंग से लिखी गई सबसे प्राचीन पुस्तक है।

समकालीन भाष्यविज्ञान में सभी चीजों के बारे में व्याख्यात्मक शैली में बताया गया है। इसमें संप्रेषण के शाब्दिक और गैर शाब्दिक संप्रेषण के साथ ही संप्रेषण को प्रभावित करने वाले पूर्व पक्षों जैसे पूर्वानुमान, पूर्व-समझ, भाषा का अर्थ और दर्शन तथा लक्षण विज्ञान सम्मिलित है। दार्शनिक भाष्यविज्ञान का अभिप्रायः प्राथमिक रूप से हेन्स जॉर्ज गॉडेमर के ज्ञान के सिद्धान्त से है जिसका विकास टूथ एन्ड मैथड पुस्तक में वर्णित है और इसका अभिप्राय पॉल रिकर के लेखनों से स्पष्ट है। एक भाष्यविज्ञानि व्याख्या की किसी एक विधि विशेष को प्रस्तुत करता है।

पारंपरिक भाष्यविज्ञान में व्याख्या सिद्धान्त सम्मिलित है जिनका सरोकार लिखित पाठ्य सामग्री के अर्थ से है। ये सिद्धान्त लेखक, पाठक, और पाठ के बीच पाए जाने वाले संबंन्धों पर केन्द्रित होते हैं। गॉडेमर का तर्क है कि पाठ्य सामग्री का अर्थ लेखक से परे जाता है और इसलिए अर्थ का निर्धारण उस बिन्दु से निर्धारित होता है जहां पाठक और लेखक के क्षितिज मिलते हैं। पॉल रिकर का तर्क है कि पाठ्य सामग्री लेखक की इच्छा और मूल श्रोताओं से स्वतंत्र होती है और इसलिए पाठक पाठ के अर्थ का निर्धारण करता है।

भाष्य विज्ञान की सीमा को बढ़ाकर उसमें न केवल मौखिक, पाठ्य और कलात्मक कार्यों का बल्कि मानव व्यवहार की पड़ताल और व्याख्या को सम्मिलत किया गया है जिसमें भाषा और वाणी के प्रकार, सामाजिक संस्थान और रीतिगत व्यवहार सम्मिलित हैं। इसमें इन घटनाओं के अर्थ की व्याख्या अथवा पड़ताल, इन घटनाओं में लिप्त भागीदार की स्वयं की अंतर्दृष्टि और आंतरिक जीवन' के दृष्टिकोण अथवा प्रथम पुरुष के दृष्टिकोण को समझ कर की जाती है।

संरचनावाद

संरचनावाद बीसवीं शताब्दी के दूसरे अर्द्धभाग में फ्रांस में एक प्रचलित आंदोलन था जो संवर्ध होकर भाषा, संस्कृति और समाज के विश्लेषण से संबंधित शैक्षिक क्षेत्रों के सबसे प्रचलित अभिगमों में से एक बन गया। संरचनावाद मानव विज्ञान के एक अभिगम के रूप में किसी विशेष क्षेत्र को परस्पर संबंधित भागों के जटिल तंत्र के रूप में विश्लेषित करने का प्रयास करता है। भाषा विज्ञान में इसकी शुरूआत फर्डीनान्ड डी सॉस्यूर के लेखन के साथ हुई। लेकिन अनेक फ्रांसीसी बुद्धिजीवी ऐसा मानते हैं कि इसके कहीं व्यापक अनुप्रयोग हैं। फलतः इस मॉडल का शीघ्र ही रूपांतरित करके अन्य क्षेत्रों, जैसे मानव विज्ञान, मनोविश्लेषण, साहित्यिक सिद्धान्त और वास्तुशास्त्र में भी उपयोग किया जाने लगा।

फर्डीनान्ड डी सॉस्यूर की भाषा विज्ञान से संबंधित पुस्तक को सामान्यतः संरचनावाद का आरंभ बिन्दु माना जाता है। संरचनावाद के लिए प्रयुक्त अंग्रेजी शब्द स्ट्रक्चरलिज्म (structuralism) फ्रांसीसी मानवविज्ञानी क्लॉड लेवी स्ट्रॉस के लेखन में दिखा था और इसने फ्रांस में संरचनावादी आंदोलन को जन्म दिया, जिसने लुईस आल्थूसर जैसे विचारकों और मनोविश्लेषक जैक्स लाका के साथ ही निकोस पोलान्टजास जैसे संरचनात्मक मार्क्सवादी के लेखन को भी प्रेरित किया। संरचनावाद प्रतीक विज्ञान से निकट रूप से संबंधित हैं।

संरचनावाद कहता है कि मानव संस्कृति को संकेतकों के तंत्र के रूप में समझा जाना चाहिए। रॉबर्ट स्कोलस ने संरचनावाद को आधुनिकतावादी अलगाव और निराशा की प्रतिक्रिया के रूप में परिभाषित किया। संरचनावादियों ने प्रतीक विज्ञान को विकसित करने का प्रयास किया। फर्डीनान्ड डी सॉस्यूर ने भाषा की प्रणाली विकसित करने की बजाय भाषा की अंतर्निहित प्रणाली पर ध्यान केन्द्रित किया और इस सिद्धान्त को प्रतीक विज्ञान कहा। अंतर्निहित प्रणाली की खोज वाणी के परीक्षण द्वारा की गई। उन्होंने तर्क दिया कि भाषाविज्ञानी संकेत दो भागों से मिलकर बनते हैं; एक विशेष्य (signifier) और दूसरा विशेषक (signified) |

उत्तर-संरचनावाद

उत्तर-संरचनात्मकतावाद फ्रांस में बीसवीं शताब्दी के दूसरे अर्द्धभाग में संरचनावाद की आलोचना के रूप में विकसित हुआ था। उत्तर-संरचनावाद में अनेक यूरोपीय दार्शनिकों और समाजशास्त्रीयों के बौद्धिक आंदोलन सम्मिलित है जिन्होंने बीसवीं शताब्दी के फ्रांसीसी दर्शन की प्रवृत्तियों की सीमा में लिखा। इस आंदोलन को व्यापक रूप से संरचनावाद की भिन्न प्रतिक्रियाओं की संस्था के रूप में समझा गया। प्रमुख योगदानकर्ताओं विशेष रूप से जैकस डेरिडा, माइकल फॉकाल्ट और जूलिया क्रिस्टेवा ने या तो संरचनावादी सिद्धांतों को उलट दिया अथवा उन्हें पूर्णतः से अस्वीकार कर दिया। रोलैन्ड बार्थस और जीन बॉद्रीलार्ड जैसे सिद्धान्तवादीयों ने मूल्यों के पूंजीवादी विनिमय से संबंधित पारंपरिक मार्क्सवादी विचारों का ऐसे नवीन सिद्धान्तों से मेल कर दिया और उपभोक्तावाद और संकेत विज्ञान के क्षेत्र के बीच संबंध पर लोगों का ध्यान आकर्षित किया। यह आंदोलन उत्तर आधुनिकतावाद से निकट रूप से संबंधित है। इसके मूल में प्रायः प्रति-मानववाद रहा है।

उत्तर-संरचनावादी चलन कुछ मूल पूर्वानुमानों से संचालित होते हैं। उत्तर-संरचनावाद में माना जाता है कि 'स्व' की अवधारणा एक पृथक, एकल और संगत इकाई के रूप में एक क्रियात्मक रचना है। व्यक्ति में दावों के विरोधाभासी ज्ञान के बीच तनाव हो सकता है। इसलिए पाठ्य सामग्री को ठीक से पढ़ने के लिए पाठक को यह समझना चाहिए कि किस प्रकार पाठ (लेखन) उसके 'स्व' की व्यक्तिगत अवधारणा से संबंधित है। यह स्व-अनुभूति उसके अर्थ की व्याख्या करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जहां विभिन्न विचारकों के 'स्व' पर विचार भिन्न हैं, लेकिन प्रायः यह कहा जाता है कि इसकी रचना विमर्शों से हुई है।

लेखक का आशय पाठक द्वारा अनुभव किए गए अर्थ से गौण होता है। उत्तर-संरचनावाद न केवल ऐसी साहित्यक पाठ्य सामग्री के विचार का खंडन करता है जिसका एक ही अर्थ अथवा एकल अस्तित्व हो। बल्कि प्रत्येक पाठक दिए गए पाठ के नए और वैयक्तिक उद्देश्य, अर्थ और अस्तित्व की रचना करता है। साहित्यिक सिद्धान्त से बाहर, इस स्थिति को ऐसी किसी भी परिस्थिति के लिए सामान्यीकृत किया जा सकता है जहां विषयी संकेत का प्रत्यक्ष करता है। व्यक्ति द्वारा अर्थ की रचना विशेष्य से होती है।

उत्तर आधुनिकतावाद

उत्तर आधुनिकतावाद का साहित्यिक अर्थ 'आधुनिकतावादी आंदोलन के पश्चात' से है। यद्यपि 'आधुनिक' का अर्थ ही वर्तमान से संबंधित कोई वस्तु है फिर भी आधुनिकतावाद का आंदोलन और उसके बाद की उत्तर आधुनिकतावाद की प्रतिक्रिया को अनुभूतियों द्वारा परिभाषित किया जाता है। इसका उपयोग एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त के रूप में साहित्य, नाटक, वास्तुकला, सिनेमा, पत्रकारिता, और शिल्प के कार्यों से इतर बीसवीं शताब्दी के अंतिम और इक्कीसवीं शताब्दी के शुरू के वर्षों में विपणन और व्यवसाय में तथा इतिहास विधि, संस्कृति और धर्म की व्याख्या में हुआ है।

उत्तर आधुनिकतावाद एक सौंदर्यबोधी, राजनीतिक, अथवा सामाजिक दर्शन है जो किसी स्थिति या किसी के होने की अवस्था को अथवा किसी संस्था या स्थितियों में हुए परिवर्तनों को उत्तर आधुनिकतावाद के रूप में वर्णित करने का प्रयास करता है। दूसरे शब्दों में, उत्तर आधुनिकतावाद विशेषरूप से कला के क्षेत्र में एक नये आन्दोलन के रूप में बीसवीं शताब्दी के पहले अर्द्धभाग में एक सांस्कृतिक और बौद्धिक परिघटना है, जबकि पश्चिम में बीसवीं शताब्दी के दूसरे अर्द्धभाग से वैश्विक रूप से उत्तर-आधुनिकता सामाजिक और राजनीतिक कार्यों और नवीनताओं पर केन्द्रित रही है।

उत्तर आधुनिकता इतिहास के गैर-कला पहलुओं से संबंधित व्युत्पन्न है जो 1960 के दशक से समाजिक आर्थिक और सांस्कृतिक विकासों के नए आंदोलन से प्रभावित था। जब अन्य क्षेत्रों द्वारा आधुनिकतावाद पर प्रतिक्रिया करने या उसे अस्वीकृत करने पर विचार किया गया तो यह कुछ संदर्भो में उत्तर–आधुनिकता का पर्याय हो गया। यह शब्द पूंजीवादी, सभ्रांत संस्कृति को अस्वीकार करने के अपने अनुभूत संदर्भ में उत्तर संरचनावाद और आधुनिकतावाद से निकट रूप से संबंधित है।

कार्ल मार्क्स

कार्ल हेनरिक मार्क्स का जन्म 5 मई, 1818 को जर्मनी में ट्राइर में एक सुविधा सपन्न मध्यम वर्गीय यहूदी परिवार में हुआ था। उनके पिता हिर्शेल मार्क्स एक वकील थे और कार्ल के बाल्यकाल में ही अपने यहूदी धर्म को बदल कर ईसाई बन गए थे जिससे कि वे प्रति सामीवाद से बच सकें। ट्राइर में अपनी विद्यालयी शिक्षा पूर्ण करने के बाद, कार्ल मार्क्स ने कानून की पढ़ाई के लिए बॉन विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। बॉन में उनकी जेनी वोन वेस्टफेलन से सगाई हो गई। बाद में कार्ल बर्लिन विश्वविद्यालय में चले गये और अपनी विशेषज्ञता का विषय कानून से बदल कर दर्शनशास्त्र कर लिया। यहां मार्क्स जी. डब्लू.एफ हेगेल के प्रभाव में आ गए। हेगेल 1831 में अपनी मृत्यु के समय तक बर्लिन में दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर रहे थे। मार्क्स युवा हेगेलवादी आंदोलन के सदस्य बन गए जोकि एक ऐसा दल था जिसमें ब्रूनों, बॉअर, डेविड स्ट्रॉस तथा अन्य सम्मिलित थे जो ईसाईवाद और प्रसियन निरंकुशता के कटु आलोचकों में से थे। जेना विश्वविद्यालय से अपनी डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त करने के बाद, मार्क्स को विश्वास था कि उन्हें अध्यापक का पद मिल जाएगा। लेकिन उनके क्रांतिकारी राजनीतिक विचारों और युवा हेगेलवादी आंदोलन से जुड़ा होने के कारण ऐसा संभव नहीं हो सका।

मार्क्स अपनी जीविका चलाने के लिए पत्रकारिता करने लगे और कोलोन चले गए वहां रीनीशे जीटंग ने उनका एक लेख प्रकाशित किया जिसमें उन्होंने प्रैस की स्वतंत्रता का बचाव किया। मार्क्स फ्रांस चले गए और 1843 के अंत में पेरिस पहुंच गए। मार्क्स ने अप्रवासी जर्मन कार्मिकों के संगठित दलों और फ्रांसिसी समाजवादियों के विभिन्न संप्रदायों के साथ शीघ्रता से संपर्क किया। उन्होंने अल्पजीवी ड्यूश-फ्रेन्जोइसिशे जोरबुकर का भी संपादन किया जिसका उद्देश्य फ्रांसीसी समाजवाद और जर्मन के मूलभूत हेगेलवाद का मेल कराना था। पेरिस में अपने प्रवास के आरंभिक कुछ महीनों में मार्क्स ने अपने विचारों को लेखन की एक श्रृंखला में कलमबद्ध किया जिसे बाद में इकोनोमिक एण्ड फिलोसॉफिकल मैनुस्क्रिप्ट्स (1844) के नाम से जाना गया। पेरिस में ही मार्क्स ने फ्रेडरिक एन्जेल्स (1820-1895) के साथ मिलकर लेखन शुरू किया। यह साथ जीवन भर बना रहा। अपनी पहली पुस्तक द होली फैमिली पर काम करते समय फ्रांसीसी सरकार ने मार्क्स को देश से निष्कासित कर दिया और मार्क्स ब्रूसेल्स चले गए जहां वे अगले तीन वर्षों तक रहे। ब्रूसेल्स में मार्क्स ने इतिहास का गहन अध्ययन किया और उसका विस्तार

इतिहास की भौतिकवादी धारणा के रूप में किया, जिसे बाद में द जर्मन आईडियोलोजी के रूप में प्रकाशित किया गया। इसके साथ ही मार्क्स ने फ्रांसीसी समाजवादी विचारक जे.पी. प्राउडहोन के आदर्शवादी समाजवाद के विरोध में विवादास्पद पुस्तक द पोवर्टी ऑफ फिलॉसफी लिखी। 1847 में कम्युनिस्ट लीग की केन्द्रीय समिति की बैठक लंदन में हुई और मार्क्स ने इस बैठक में भागीदारी की। केन्द्रीय समिति के आग्रह पर ब्रूसेल्स आने के बाद उन्होंने कम्युनिष्ट मेनीफेस्टो लिखी।

1848 की शुरूआत में मार्क्स पेरिस चले गए जहां किंग लुईस फिलिप के विरूद्ध विद्रोह जारी था, जिन्हें बलात गद्दी त्यागनी पड़ी थी। धीरे-धीरे यह क्रांति जर्मनी तक पहुंच गई। जर्मनी में विद्रोह की शुरूआत हो जाने पर मार्क्स कोलोन चले गए। यद्यपि 1848 की गर्मियों में विद्रोह को कुचलने के लिए पहली प्रतिक्रिया दिखी और क्रांतिकारी आंदोलनों को दबा दिया गया। अंततः मार्क्स मई 1849 में लंदन में बस गए जहां उन्होंने 'देशनिकाला के लंबे अशांत काल को बिताया जो उनके पूरे जीवन भर चला। उन्होंने फ्रांस की 1848 की क्रांति और उसके परिणाम पर दो लंबे पत्र, द क्लास स्ट्रगल इन फ्रांस और 18h ब्रूमेयर ऑफ लुई बोनापार्ट लिखे। 1850 के दशक के पहले अर्द्धभाग में मार्क्स के परिवार ने लंदन के सोहो क्वार्टर में निर्धनता में जीवन बिताया। मार्क्स और जेनी के पहले ही चार बच्चे थे और इसके बाद दो और हुए। इनमें से केवल तीन ही जीवित रहे। इस समय मार्क्स की आय का प्रमुख स्रोत एन्जेल्स से मिलने वाली सहायता थी। 1852 से मार्क्स ने न्यूयोर्क डेली ट्रिब्यून में लेखों की श्रृंखला लिखना शुरू किया और न्यू अमेरिकन एन्साक्लोपीडिया लिखने में भी योगदान दिया। लंदन में मार्क्स ने ब्रिटिश म्यूजियम में पुस्तकें और जर्नल पढ़ने में काफी समय बिताया और इससे उन्हें पूंजीवादी समाज का विश्लेषण करने में सहायता मिली। 1857 में उन्होंने पूंजी, भूसंपत्ति, दिहाड़ी मजदूर, राष्ट्र, विदेश व्यापार और विश्व बाजार पर 800 पृष्ठों की वृहत् पुस्तक द ग्रन्डीज (आउटलाइन्स) लिखी। मार्क्स ने 1859 में अपनी पुस्तक ए कंट्रीब्यूशन टु द क्रिटिक ऑफ पॉलिटिकल इकोनोमी प्रकाशित की। 1860 के दशक के आरंभ में उन्होंने थ्योरिज ऑफ सरप्लस वैल्यू के तीन खण्ड लिखे, जिनमें राजनीतिक अर्थव्यवस्था के सिद्धान्तों की चर्चा की गई थी। 1867 से पहले तक मार्क्स कैपिटल का खण्ड । ही प्रकाशित कर पाए थे। खण्ड ॥ और ॥। 1860 के दशक में पूर्ण हुए थे, लेकिन उन्हें मार्क्स की मृत्यु के बाद एन्जेल्स द्वारा प्रकाशित किया गया था।

मार्क्स को 1864 में पहली अंतर्राष्ट्रीय जनरल काउन्सिल के लिए चुना गया था। अपने जीवन के अंतिम दशक में यद्यपि मार्क्स का स्वास्थ्य गिर गया था, फिर भी उन्होंने अपनी पुस्तक क्रिटिक ऑफ गोथा प्रोग्राम में समकालीन राजनीति पर टिप्पणी की थी। वेरा जैसलिक के साथ अपने पत्राचार में, मार्क्स ने विद्यमान किसान सहकारी संघों के आधार पर रूस द्वारा विकस के पूंजीवादी चरण को छोड़कर साम्यवाद के विकास की संभावना पर विचार किया था। मार्क्स अपने जीवन के अंतिम वर्षों में अपनी सबसे बड़ी पुत्री और पत्नी की मृत्यु के कारण दुःखी थे। उनकी मृत्यु 14 मार्च, 1883 को हुई और उन्हें लंदन में हाईगेट कब्रगाह में दफनाया गया।

मार्क्सवाद को शास्त्रीय जर्मन दर्शन, फ्रांसीसी समाजवाद और ब्रिटिश अर्थव्यवस्था के साथ सतत्ता में और उसके चरमोत्कर्ष के रूप में माना जा सकता है। मार्क्स के दर्शन और उस सामाजिक चलन को समझने के लिए जिसकी उन्होंने पैरवी की थी, यह आवश्यक है कि हम ज्ञान के इन क्षेत्रों में से प्रत्येक पर विचार करें जिन्होंने मार्क्स के चिंतन की ऐतिहासिक और शैक्षिक पृष्ठभूमि निर्मित की।

हेगेल इस काल के सबसे प्रमुख दार्शनिक थे और उनका मानना था कि सत् और चेतना एक है और मानव-चेतना स्वयं से और सत् से पृथक चेतना है। उन्होंने माना कि यह अलगाव ज्ञान द्वारा दूर किया जा सकता है। ज्ञान की वस्तु में ऐसा कुछ नहीं है जिसे स्वयं चेतना द्वारा नहीं प्रस्तुत किया गया है। अपने विश्वविद्यालय के दिनों में मार्क्स मूलभूत वामपंथी दल 'यंग हेगेलीयन्स' के सदस्य बन गए । मार्क्स ने हेगेल के 'द्वन्दवाद' को स्वीकार किया; लेकिन उनके लिए इतिहास चेतना की द्वन्दात्मक अभिव्यक्ति नहीं बल्कि पुरुषों और स्त्रियों के द्वारा जगत को अपने अस्तित्व के साधनों की रचना द्वारा बदलना है। वह युवा हेगेलवादी आंदोलन से अलग हो गए और उन्होंने होली फैमिली, द थीसिस ऑन फेयरबाख तथा जर्मन आइडियोलोजी में उनकी विचारधारा से अपनी असहमति व्यक्त की। द थीसिस ऑन फेयरबाख में मार्क्स की सबसे स्मरणीय टिप्पणियों में से एक है : दार्शनिकों ने केवल जगत की व्याख्या की है, आवश्यकता इसे बदलने की है (थीसिस, 11)। इस काल के भौतिकवाद ने हमारे द्वारा अनुभव किए जाने वाले जगत

की रचना में मनुष्य की सक्रिय भूमिका को अनदेखा कर दिया। आदर्शवाद, जैसा कि हेगेल ने विकसित किया था, ने मनुष्य की सक्रिय प्रकृति को समझा, लेकिन उसने स्वयं को केवल विचार अथवा चिंतन तक ही सीमित रखा। मार्क्स ने दोनों परंपराओं की अंतदृष्टि को मिलाकर एक मत प्रस्तुत किया जिससे मनुष्य उस जगत् को रूपांतरित कर देता है जिसमें वह है। यह रूपांतरण न केवल विचार में बल्कि वास्तविक भौतिक क्रियाओं के द्वारा वास्तविकता में होता है। भौतिकवाद का यह ऐतिहासिक रूप मार्क्स के इतिहास के सिद्धान्त का आधार है; इसकी उत्पत्ति दर्शन के इतिहास पर उनके चिंतन, उस काल की सामाजिक और आर्थिक वास्तविकताओं पर उनके अनुभव, और श्रमिक वर्ग से उनका सामना होने से हुई थी।

समाजवाद, जैसा कि हम आज जानते हैं कि आधुनिक औद्योगिक जगत का उत्पाद है। आधुनिक युग से पहले सहस्त्रादिक और आदर्शवादी विचार केवल ईसाई उपसिद्धान्त के रूप में पाए जाते थे। धीरे-धीरे विशेष रूप से फ्रांसीसी क्रांति के काल में और उसके बाद ये विचार धर्म निरपेक्ष बन गए। जी डी एच कोले ने अपनी पुस्तक हिस्ट्री ऑफ सोशलिस्ट थॉट के पहले खण्ड में कहा है कि शब्द सोशलिस्ट (समाजवादी) का उपयोग सर्वप्रथम 1827 में ओवनाइट कोपरेटिव पत्रिका में रोबर्ट ओवन के सहकारी सिद्धान्तों के सामान्य विवरण के रूप में और उसके बाद 1832 में ला ग्लेब में सोशलिस्म के रूप में हुआ। 1830 के दशक में इस शब्द का सामान्य अर्थ समाज के ऐसे तंत्र से था जिसने व्यक्ति की अपेक्षा समाज, प्रतिस्पर्धा की अपेक्षा सहकारिता, व्यक्ति की स्वपर्याप्तता की अपेक्षा सामाजिकता, और निजी संपत्ति के उपयोग और संचयन की अपेक्षा सामाजिक नियंत्रण पर बल दिया। लुई ब्लैन्की, फोरियर, रोबर्ट ओवन आदि ने समाजवाद के विभिन्न रूपों की पैरवी की। मार्क्सवाद समाजवादी विचार की विभिन्न विचारधाराओं और राजनीतिक उद्धार आंदोलनों की आलोचना और उनके क्रांतिकारी रूपांतरण के रूप में उभरा।

अर्थ व्यवस्था

पूंजीवाद एक आर्थिक सिद्धान्त है जिसमें माना जाता है कि उत्पादन के साधनों पर निजी रूप से व्यक्तियों का स्वामित्व होना चाहिए। पूंजीवादी मानते हैं कि निजी स्वामित्व और स्वतंत्र उद्यम से अधिक सक्षमता, कम मूल्य और उच्च उत्पाद मिलेंगे। एडम स्मिथ ने माना कि कोई व्यक्ति सीधे समाज के उत्थान के लिए कार्य करने की अपेक्षा अपने निजी हितों को पूर्ण करने में समाज का अधिक सक्षमता से उत्थान करता है। पूंजीवादी विचारधारा के अनुसार, प्रबुद्ध स्वहित और मुक्त बाजार में स्पर्धा से मूल्यों को कम रखकर और विभिन्न प्रकार की वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन के लिए प्रोत्साहन प्रदान करने से समाज का अधिक हित होता है। उत्पादन के पूंजीवादी ढंग में श्रम के विभाजन की पैरवी की जाती है, क्योंकि उसमें यह माना जाता है कि इससे उत्पादन में वृद्धि होती है। आधुनिक पूंजीवाद से अत्यधिक पूंजी निर्मित हुई। पूंजीवाद उत्पादन के ढंगों में निरंतर तीव्र परिवर्तनों के बिना अस्तित्व में नहीं रह सकता है। जबकि इस प्रणाली ने श्रमिकों, जो संपदा के वास्तविक उत्पादक होते हैं. में अलगाव उत्पन्न किया और उन्हें अधिक निर्धन बना दिया। वे जितना अधिक काम करते थे उतने ही निर्धन हो गए थे। मार्क्स ने अनुभव किया कि श्रमिक वर्ग यानि जनता के एक बड़े भाग को मुक्त करने के लिए अथवा सर्वहारा को दमन की बेड़ियों से मुक्त करने के लिए एक नए आर्थिक और सामाजिक तंत्र की आवश्यकता थी।

ऐतिहासिक भौतिकवाद

हेगेल के दर्शन, समाजवाद और पूंजीवाद की विभिन्न विचारधाओं की आलोचना ने मार्क्स को एक ऐसे नए दर्शन की खोज करने के लिए प्रेरित किया जो साम्यवाद को वास्तविकत रूप देने से सहायक हो सके। उन्होंने यह देखने के लिए इतिहास का अध्ययन किया कि किस प्रकार समाजों का प्राचीन साम्यवाद से दास अर्थ व्यवस्था, फिर सामन्तवाद और अंत में समकालीन पूंजीवाद के रूप में विकास हुआ। उनका मानना था कि जब हम इतिहास के विकास के नियमों को समझ लेते हैं तो हम अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए उन्हें नियंत्रित भी कर सकते हैं। मार्क्स की ऐतिहासिक भौतिकवाद की अवधारणा उनके द्वारा विकास की ऐतिहासिक प्रक्रिया को समझाने का एक प्रयास था।

इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या में माना जाता है कि इतिहास मनुष्यों का उत्पाद है; पुरुष और महिलाएं मिलकर इतिहास बनाते हैं लेकिन वे दी गई स्थितियों में ऐसा करते हैं। विकास और परिवर्तन की प्रक्रिया निम्न प्रकार है।

मनुष्यों की आवश्यकताएं होती हैं और इन आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए वे उत्पादन करते हैं। उत्पादन की पद्धति वह ढंग है जिसमें पुरुष और महिलाएं अपने निर्वहन के साधन उत्पन्न करते हैं। समय के साथ उत्पादन के ढंग परम्परागत रूप लेकर पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्रचलित हो जाते हैं। प्रकृति के साथ इस गत्यात्मक संबंध को ही मार्क्स ने उत्पादक बल नाम दिया था। मनुष्य वैयक्तिक व्यक्तियों के रूप में नहीं बल्कि समुदाय के सदस्य के रूप में पैदा होते हैं, जिनके बीच संबंध बड़ी सीमा तक उत्पादन की पद्धति द्वारा निर्धारित होता है।

यह आर्थिक संरचना समाज का आधार बनाती है जिस पर अधिसंरचनाओं जैसे कानून, धर्म, नैतिकता का निर्माण होता है जो सामाजिक चेतना के निश्चित प्रकारों के अनुरूप होता है। स्वयं आर्थिक ढांचे में उत्पादक बल उत्पादन संबंधों पर प्रभावी रहते हैं।

अधिसंरचनाएं विकसित हो जाने पर आधार पर प्रतिक्रिया कर सकती हैं और एक सीमा तक स्वायत्तता प्राप्त कर सकती है।

सामाजिक परिवर्तन का कारण दिए गए आर्थिक तंत्र में अंतर्विरोधों का बढ़ना होता है। अतः अन्तर्विरोध से उत्पन्न होने वाले संघर्ष निम्न हैं : (i) नई आवश्यकताओं और उत्पादन की पुरानी पद्धति के बीच संघर्ष; (ii) उत्पादन के संदर्भ में शर्तों के बीच संघर्ष; (iii) आधार और अधिसंरचना के बीच संघर्ष और (iv) अधिसंरचनाओं के बीच संघर्ष । जब संघर्ष बढ़ते हैं, तो एक प्रकार के समाज से दूसरे प्रकार का समाज बन जाता है। मनुष्य स्वयं परिवर्तन के सबसे बड़े प्रमुख कर्मक है, जो मनुष्य इन संघर्षों और हितों के जानकार होते हैं वे इतिहास के क्रम को बदल सकते हैं।

वर्ग एवं वर्ग संघर्ष

वर्ग व्यक्तियों का वह समूह होता है जो संपत्ति अथवा गैर संपत्ति और उत्पादन के कारकों, जैसे श्रम शक्ति और उत्पादन के साधन के संदर्भ में समान होते हैं। हम कह सकते हैं कि वर्ग व्यक्तियों का वह समूह है जिसे अपनी स्थायी निधियों का श्रेष्ठ उपभोग करने के क्रम में संपादाओं के आधार पर एक प्रकार की गतिविधियों में संलिप्त रहना पड़ता है। मार्क्स वर्ग और वर्ग संघर्ष की अवधारणा की खोज करने वाले पहले व्यक्ति नहीं थे। लेकिन मार्क्स पहले ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने वर्ग और वर्ग संघर्ष को इतिहास के वर्णन में मुख्य श्रेणियों के रूप में रखा था। मार्क्स ने दिखाया कि (1) वर्गों का अस्तित्व उत्पादन के विकास की पूर्व निर्धारित ऐतिहासिक प्रावस्थाओं से जुड़ा है; (2) वर्ग संघर्ष से अनिवार्य रूप से श्रमिक वर्ग का प्रभुत्व स्थापित होता है; और (3) यह प्रभुत्व स्वयं में केवल एक संक्रामी अवस्था है जिससे आगे चलकर सभी वर्गों का उन्मूलन हो जाता है और वर्गहीन समाज की स्थापना होती है। मेनीफेस्टो में मार्क्स कहते हैं कि इतिहास अब तक वर्ग संघर्ष का इतिहास रहा है। जब पूंजीवाद विकसित हो गया और पूंजीवादी अधिक से अधिक सत्ता और संपदा अर्जित करते गए तो इससे भी एक निर्बल श्रमिक वर्ग निर्मित हो गया। पूंजीवादी तंत्र में दोनों मूलभूत वर्ग उत्पादन के साधनों के स्वामी (पूंजीवादी) तथा श्रमिक, जो अपनी श्रम शक्ति को बेचते हैं, एक दूसरे का विरोध करते हैं। पूंजीवादी जो अपने विशेषाधिकारों को त्यागना नहीं चाहते हैं, और श्रमिक जिन्हें अपनी हानि, अपने अलगाव, अपनी अमानवीय स्थिति, जिसमें वो रहते और काम करते हैं, का ज्ञान हो गया है, के संघर्षों के फलस्वरूप क्रांति की स्थितियां निर्मित हो जाती हैं। यह क्रांति साम्यवाद की स्थापना के लिए आधार प्रदान करती है।

अलगाव

इतिहास में पहली बार ऐसा हुआ है कि हम ऐसी दुनिया में रह रहे हैं जहां हमारे पास ऐसी प्रोद्यौगिकी और साधन हैं जिससे हम इतना उत्पादन कर सकते हैं जिससे धरती पर सभी की आवश्यकतों को पूर्ण किया जा सके; किन्तु फिर भी करोड़ों जीवन निर्धनता से अवरूद्ध और रोगों से नष्ट हो जाते हैं। बड़ी संख्या में लोग अपना जीवन अकेलेपन, उदासी और अलगाव की भावनाओं के साथ जीते हैं। ये स्थितियां प्राकृतिक या अपरिहार्य नहीं हैं बल्कि वर्तमान सामाजिक आर्थिक प्रणाली यानी समकालीन पूंजीवाद की उपज है। मार्क्स ने अपने अलगाव के सिद्धान्त को इन

अन्तर्विरोधों अर्थात् असंबद्ध मानवीय क्रियाकलापों के कारणों जैसे कि अलगाव पूर्ण मानवीय क्रिया, जो समाज में प्रभावशाली र्निव्यक्तिक प्रतीत होते बलों में निहित होते हैं का पता लगाने के लिए विकसित किया। मार्क्स के लिए अलगाव मन अथवा धर्म में निहित नहीं है; जैसा कि उनके पूर्ववर्तियों हेगेल और फेयरबाख का मानना था, बल्कि इसकी जड़े भौतिक जगत् में ही होती हैं। अलगाव का अर्थ स्वामित्व खो देना, विशेष रूप से श्रमिकों का श्रम शक्ति पर, श्रम के उत्पाद और उसके वस्तुकरण पर स्वामित्व खो देना है।

अलगावित श्रम

मार्क्स ने मानव श्रम को उन मुख्य ढंगों में से एक माना था जिनसे मनुष्य पशुओं से भिन्न होता है। पशु उत्पादन करते हैं, लेकिन केवल अपनी उत्तरजीविता के लिए और वे ऐसा केवल अपने नैसर्गिक ढंग से करते हैं। इसके विपरीत, मनुष्य रचनाशील होते हैं और अपनी जीवन-क्रियाओं और श्रम को अपनी इच्छाओं और चेतना से चलाते हैं। मार्क्स ने पूंजीवाद को ऐसी आर्थिक और सामाजिक प्रणाली के रूप में देखा जिसने उत्पादक बलों को इतना अधिक निर्मित और प्रेरित किया जितना वे पहले कभी नहीं थे। ये उत्पादक बल मानव क्षमता को निष्फल, विरूपित, और सीमित कर देते हैं। अलगावित श्रम के चार पहलू हैं;

1. श्रमिक अपने श्रम से निर्मित उत्पादों से अलगाव का अनुभव करता है। अलगवित श्रम का प्रथम पहलू श्रमिक का अपने श्रम के उत्पादों से पृथककरण है। पूंजीवाद में श्रमिक के द्वारा निर्मित उत्पादों को श्रमिक से लेकर बेच दिया जाता है और इस प्रकार स्वयं श्रम एक वस्तु बन जाता है। यह अलगाव पूंजीवादी को और अधिक धनवान और शक्ति संपन्न बनाता है लेकिन श्रमिकों को दासता और निर्धनता झेलनी पड़ती है।
2. श्रमिक उत्पादन की प्रक्रिया से अलगावित होता है। पूंजीवाद में श्रम नियोक्ता द्वारा नियंत्रित होता है और श्रमिक उससे पृथक रहता है और उसका श्रम उसे अपना अनुभूत नहीं होता है। कार्य करते समय, श्रमिक को संतुष्टि का बोध नहीं होता है।
3. श्रमिक मानव प्रजाति से स्वयं को पृथक मानने लगता है। पूंजीवाद में व्यक्ति मनुष्य की भांति कम और मशीन की भांति अधिक कार्य करता है। मनुष्य भौतिक आवश्यकताओं से मुक्त होने पर उत्पादन करता है, समाज के सदस्य के रूप में सौन्दर्य बोध के साथ स्वतंत्र रूप से विश्व को पुर्नसंरचित एवं निर्मित करता है। यह मानव-प्रजाति के रूप में उत्पादन का सार है। पूंजीवाद में उत्पादन नीरस होता है और मात्र आजीविका का साधन होता है। इस प्रक्रिया में व्यक्ति को बलात् मानवीय गुणों का त्याग करना पड़ता है।
4. श्रमिक अन्य व्यक्तियों से अलगांव का अनुभव करता है। पूंजीवाद में मानवीय संबंध बाजार अथवा विनिमय संबंधों तक सीमित हो जाते हैं। मार्क्स के अनुसार, विनिमय संबंध सामाजिक संबंध होते हैं, यद्यपि ऐसा लगता है कि ये केवल आर्थिक संबंध हैं।

श्रम का विभाजन, वेतनिक परिश्रम और निजी संपत्ति अलगाव की अभिव्यक्तियां हैं। अलगाव को समाप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि निजी संपत्ति को समाप्त कर दिया जाए और निजी संपत्ति और श्रमिक के बीच संबंध को समाप्त कर दिया जाए। मार्क्स का मानना था कि वर्ग संघर्ष के द्वारा, जो कि क्रांति में बदल जाएगा, श्रमिक वर्ग की सत्ता स्थापित होगी और निजी संपत्ति समाप्त हो जाएगी और इस प्रकार अलगांव दूर हो जाएगा।

साम्यवाद

मार्क्सवाद का उद्देश्य साम्यवादी समाज अर्थात् वर्गहीन समाज की स्थापना करना है। श्रमिक वर्ग की सत्ता और नवोदित समाजवादी समाज की पहचान निम्न कारकों से होती है :

- निजी संपत्ति का उन्मूलन
- उत्तराधिकार का उन्मूलन
- श्रम के विभाजन का उन्मूलन
- शिक्षा का सार्वभौमिकरण

नियोजित अर्थ व्यवस्था तथा समाज के संसाधनों का उचित और न्यायपूर्ण आवंटन जब समाजवाद विकसित होगा तो राष्ट्र के शिथिल हो जाने और ऐसे समाज के निर्माण की आशा की जाएगी जिसका आधारभूत नियम 'प्रत्येक से उसकी क्षमता के अनुसार और प्रत्येक के लिए उसकी आवश्यकता के अनुसार' होगा जैसा कि क्रिटिक ऑफ गोथा प्रोग्राम में उल्लेख किया गया है। यह एक ऐसा संबंध होगा जिसमें प्रत्येक का मुक्त विकास सभी के मुक्त विकास के लिए पहली शर्त होगी (द मेनीफेस्टो)।

एक वास्तविक साम्यवादी समाज में एक भ्रामक प्रसन्नता के आश्वासन के रूप में अथवा जनता द्वारा उठाए जाने वाले कष्टों और पीड़ाओं को कम करने के लिए अफीम के रूप में धर्म के लिए कोई स्थान नहीं होगा।

साम्यवाद हमारे लिए कोई ऐसी वस्तु स्थिति नहीं है जिसे स्थापित किया जाना है; बल्कि एक आदर्श है जिसमें वास्तविकता का समायोजन करना है। हम साम्यवाद को एक ऐसा वास्तविक आंदोलन मानते हैं जो वर्तमान शोषित एवं असमान स्थितियों को समाप्त कर देगा। इस आंदोलन के लिए स्थितियां आज विद्यमान आधार से ही मिलेगी' (द जर्मन आइडियोलॉजी)।

फ्रेडरिक नीत्से

नीत्से का जन्म 15 अक्टूबर, 1844 को रॉकेन, पूसियन सैक्सोनी में हुआ था। उनके पिता लुडविग नीत्से, जो कि एक मंत्री थे, ने उनका नामकरण इस कारण से पूसिया के राजा फ्रेडरिक विल्हेम IV के नाम पर फ्रेडरिक विल्हेम रखा था क्योंकि इनका जन्म उनके जन्मदिन पर हुआ था। 1849 में लुडविग की मृत्यु हो गई और नीत्से को उनकी मां, बहन, नानी और दो मौसियों ने पाला। 1858 में उन्होंने नामबर्ग के निकट एक प्रसिद्ध बोर्डिंग स्कूल फोर्टा में प्रवेश लिया। वह प्रायः कक्षा में प्रथम आते थे और उन्होंने उत्कृष्ट शिक्षा प्राप्त की। यूनानी दर्शन के प्रति उनका झुकाव उनके स्कूली दिनों में ही हो गया था। उन्होंने बोन विश्वविद्यालय से धर्मविज्ञान और पुरातन भाषाशास्त्र का अध्ययन किया और 1864 में उन्होंने स्नातक की उपाधि ली। लेकिन 1865 में वे धर्मविज्ञान का अध्ययन छोड़कर लीपजिग चले गए। लीपजिग में एक विद्यार्थी के रूप में नीत्से की भेट आर्थर शोपेन हावर (जिन्हें उनके निराशावाद के लिए जाना जाता है) और रिचर्ड बैगनर (उस काल के एक मकान संगीतज्ञ) से हुई। इन दोनों का उनके आरंभिक चिंतन पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। अपने उन शोध पत्रों की समीक्षा करने के बाद जिन्हें 1869 में 'रेनीशेस म्युजियम' में प्रकाशित किया गया था, बेसल विश्वविद्यालय ने उन्हें डॉक्टरेट की उपाधि लेने से पहले ही चेयर ऑफ फिलॉसफी का पद दे दिया।

उन्होनें कभी विवाह नहीं किया यद्यपि उन्होंने दो महिलाओं के समक्ष शादी का प्रस्ताव रखा था जिनमें से एक नीदरलैन्ड की और दसरी रूसी थी। दोनों ने उनसे विवाह करने को मना कर दिया। उनका कुछ समय तक अपनी बहन एलिजाबेथ से भी विवाद रहा क्योंकि उन्होंने एक फॉसीवादी से विवाह कर लिया और उनके साथ अर्जेन्टीना चली गई। लेकिन वो बाद में अपनी मां की मृत्यु के पश्चात् वापस आ गई और नीत्से की देखभाल करने लगी। वो अपने भाई पर अपना अत्यधिक अधिकार समझती थी, उसने उसके इर्दगिर्द एक कल्पित जाल बुन रखा था और ये माना जाता है कि उन्होंने अपनी फॉसीवादी विचारधारा के अनुसार उनके अनेक ग्रंथों के साथ छेड़छाड़ की थी। जीवनभर नीत्से का स्वास्थ्य खराब ही रहा। उनके चिकित्सक उन्हें लगातार उनकी क्षीण दृष्टि के कारण कम पढ़ने-लिखने का परामर्श देते रहे। लेकिन उन्होंने उनकी परामर्श नहीं मानी और गंभीर माइग्रेन तथा पेट दर्द झेलते रहे और नींद के लिए नींद की गोलियां खाते रहे। 1889 में, नीत्से का मानसिक तनाव अत्यधिक बढ़ गया। यद्यपि, वे लेखन कार्य करते रहे और उन्होंने अनेक पुस्तकों का प्रकाशन किया उनकी पुस्तकें ही उनका जीवन बन गई। जनवरी 1889 में, नीत्से तूरिन में अपने सईस द्वारा पकड़े गए घोड़े पर चढ़ते समय गिर पड़े। फिर वो कभी ठीक नहीं हो पाए और अपनी मृत्यु तक अपंग ही रहे। 25 अगस्त 1900 को नीत्से 56 वर्ष की उम्र में मर गए, उनकी मृत्यु निमोनिया और आघात के कारण हुई। उनके शव को उनके परिवार की कब्रगाह, जहां उनकी मां और बहन को भी दफनाया गया था, में रोकेन में एक चर्च के बगल में दफनाया गया।

नीत्से का दर्शन

नीत्से दार्शनिकीकरण एवं सम्प्रत्ययीकरण के पारंपरिक ढंगों से संतुष्ट नहीं थे। नीत्से ने तर्क के साथ अपने विचारों को पारंपरिक से काफी भिन्न ढंग से प्रस्तुत किया। उनका लेखन उनके दार्शनिक उद्यम का क्रमबद्ध विवरणं प्रस्तुत नहीं करता है। क्रमबद्ध प्रस्तुतीकरण के लिए उनकी अरूचि उनके लेखन में परिलक्षित होती है। उन्होंने अपने विचारों को व्यवस्थित ढंग से नहीं लिखा है जिससे कि उनकी स्वयं की पद्धति विकसित हो सके। नीत्से ने स्वयं यह कहते हुए उसे स्पष्ट कर दिया कि "मैं किसी व्यवस्था पद्धति में विश्वास नहीं करता हूं और इसीलिए उनसे बचता हूं। पद्धति/तंत्र की इच्छा सत्यनिष्ठा की कमी प्रदर्शित करती है। इसलिए उनके दर्शन को क्रमबद्ध रूप से प्रस्तुत करना आसान नहीं है। उनके दर्शन को आसानी से तत्वमीमांसा, नीतिशास्त्र, सौंदर्यशास्त्र, कलाशास्त्र आदि से पृथक नहीं किया जा सकता है। फिर भी हमने अपने व्यवहारिक उद्देश्य से उनके दर्शन को निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत श्रेणीबद्ध करने का प्रयास किया है।

शून्यवाद

नीत्से वास्तविकता अर्थात् ब्रह्मंड को मूल्यहीन समझते थे। प्रत्येक जैविक और अजैविक वस्तु पदार्थ का उत्पाद है। पदार्थ का मापन किन्हीं नियमों के द्वारा किया जा सकता है। विज्ञान और प्रोद्यौगिकी के विकास, पुर्नजागरण काल के विचारक, ईसाई धर्म के विरूद्ध क्रांति, डार्विन का विकास का सिद्धान्त और अन्य ऐसे अनेक कारणों को बताया जा सकता है जिनके कारण जगत को मूल्यहीन माना गया था। यह मत कि यह जगत् और कुछ नहीं बल्कि एक बड़ी मशीन है प्रभावी था और नीत्से का विचार था कि लोग इससे उत्पन्न को नहीं समझ रहे हैं। नीत्से से इस निरर्थकता को शून्यवाद के रूप में पहचाना। उन्होंने पश्चिमी समाज को शून्यवाद की इस भयावहता से ग्रसित माना था।

नीत्से ने शून्यवाद पर सन्देह किया और माना कि यह या तो शक्ति अथवा दुर्बलता का लक्षण हो सकता है। नीत्से का दावा है कि शून्यवाद सभी मूल्यों के पुर्नमूल्यांकन के क्रम में एक आवश्यक चरण है। यह निराशावाद का सबसे चरम रूप है। सरल शब्दों में, यह वह धारणा है कि सभी कुछ अर्थहीन है। यह ऊब/थकान से उत्पन्न होती है। शून्यवाद एक संक्रामी अवस्था है जिसमें मानव के विकास तथा पुरातन मूल्यों को दूर किया जाता है जिससे उनके स्थान पर कुछ नया जन्म ले सके। नीत्से ने दो प्रकार के शून्यवाद के बारे में बताया था : निष्क्रिय शून्यवाद अथवा अपूर्ण शून्यवाद और सक्रिय शून्यवाद अथवा पूर्ण शून्यवाद। निष्क्रिय शून्यवाद की पहचान दुर्बल इच्छाशक्ति से और सक्रिय शून्यवाद की दृढ़ इच्छाशक्ति से होती है।

निष्क्रिय शून्यवाद : निष्क्रिय शून्यवाद में यह पारंपरिक धारणा अधिक प्रभावी है कि 'सभी कुछ अर्थहीन है। यह इसका परिणाम है कि हमारे चिन्तन में क्या घटता है। नीत्से के अनुसार, उच्चतम मूल्य स्वयं अपना मूल्य खो देते हैं। इनका कोई उद्देश्य नहीं है। इसमें 'क्यों' का कोई उत्तर नहीं है। उच्चतम मूल्य अभी तक ईश्वर और अन्य तत्वमीमांसीय या देवलोकीय वास्तविकताओं को माना जाता रहा है। देवलोक को वास्तविक जगत् और इस लोक को एक छलावा मात्र माना गया है। अब, ईश्वर की भूमिका पर 'प्रश्नचिन्ह लग गया और 'अनुभव' को ही ज्ञान अर्जित करने का एकमात्र आधार माना जाने लगा। परिणामस्वरूप कोई भी चीज जिसे पवित्र और निर्विवाद माना जाता है, वह 'संदेहवाद' के अंतर्गत आ जाती है। इसके फलस्वरूप शून्यवाद आया। हमारा सामना इस कठोर सच्चाई से हुआ कि यह जगत उद्देश्यहीन और अर्थहीन है। जगत् अर्थहीन इसलिए दिखता है क्योंकि जो चीजें इसे अर्थ प्रदान करती हैं उन्हें त्याग दिया गया। इसका एक मुख्य कारण ईसाई विचारधारा का अंत हो सकता है, हमारा अभिप्राय न्यायपरक के रूप में, जीवन के स्रोत के रूप में, मूल्यों के स्रोत के रूप में, और हमारे अस्तित्व के अर्थ के स्रोत के रूप में ईश्वर को मान्यता देने से है। अब, प्रत्येक चीज आशावादी अथवा वैज्ञानिक सोच से संबंधित है, जिसमें नैतिक मूल्य जगत से सम्बंधित नहीं हैं और इसलिए शून्यवाद का जन्म होता है। इस प्रकार का शून्यवाद अपूर्ण या निष्क्रिय कहा जाता है।

यह अपूर्ण या निष्क्रिय शून्यवाद ही है क्योंकि देवलौकिक गुणों के अस्तित्व को नकारने के बाद भी; मनुष्य किसी अन्य चीज में अर्थ ढूंढ लेता है। इस अन्य को मूल्यहीनता के मध्य भी हमारे अस्तित्व को मूल्य और उद्देश्य देने वाले

के रूप में देखा जा सकता है। यह और कुछ नहीं बल्कि नैतिकता है। ईश्वर के अस्तित्व को नकारने का अर्थ आवश्यक रूप से नैतिकता को नकारना नहीं है। नैतिकता ने जगत् के औचित्य में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। मनुष्य ने अस्तित्व के अर्थ को विद्यमान नैतिक तंत्र की स्वीकार्यता के रूप में मान लिया है। इसलिए हमें अपने अस्तित्व का विद्यमान नैतिक तंत्र प्रमाणित करने से परे जाने की आवश्यकता है।

सक्रिय शून्यवाद - नीत्से ने पूर्ण अथवा सक्रिय शून्यवादी होने का प्रयास किया। उन्होंने यह बहुत अच्छे ढंग से समझ लिया था कि नैतिकता शून्यवाद का 'प्रतिकार' है। नीत्से का तर्क था कि "प्रत्येक विशुद्ध नैतिक मूल्य तंत्र का अंत शून्यवाद में होता है। व्यक्ति अभी भी बिना धार्मिक पृष्ठभूमि के आदर्शवाद की आशा कर सकते हैं लेकिन उससे आवश्यक रूप से शून्यवाद ही उपजता है। अतः यह पर्याप्त नहीं है कि हम गैर-तत्वमीमांसक होने का प्रयास करें बल्कि हमें सक्रिय शून्यवादी होने का प्रयास भी करना चाहिए। यदि हमारा सामना शून्यवाद से हो तो हमें सक्रिय और दृढ़ रूप से उसका सामना करना चाहिए। हमें किसी ऐसी चीज का मूल्यांकन नहीं करना चाहिए जो नहीं है जैसा कि निष्क्रिय शून्यवादी करते हैं। बल्कि हमें आधारहीन और मूल्यहीन जगत का सामना सक्रिय रूप से करना चाहिए। यह सक्रिय या पूर्ण शून्यवाद को परिलक्षित करता है।

अंत में, जहां उन्नीसवीं शताब्दी के अंत को नीत्से के अधिकांश समकालीन विचारकों, जो विज्ञान की प्रगति और जर्मन साम्राज्य के उत्थान के लिए आश्वस्त थे, ने अनियंत्रित आशावाद के रूप में देखा वहीं नीत्से ने अपने युग को मूल्यों के मूलभूत पतन का सामना करने वाले काल के रूप में देखा था। उन्होंने अंततः उस शून्यवाद को जाना जिसे अन्य लोग नहीं समझ पाए थे और उस पर सक्रिय रूप से प्रतिक्रिया की। "शून्यवाद मूलतः केवल एक ही सत्य की घोषणा करता है कि अंततः शून्यता ही बनी रहती है और यह जगत् अर्थहीन है।"

शक्ति की इच्छा

इच्छा शक्ति को समझने के लिए, हमें नीत्से की पृष्ठभूमि और आर्थर शॉपनेहॉर की आलोचना पर विचार करना होगा। शॉपेनहॉर ने यह स्वीकार किया कि 'जीने की इच्छा' वह शक्ति है जो सजीव जीवजंतओं को जीवन का निर्वहन और विकास करने के लिए प्रेरित करती है। इसके विपरीत, नीत्से ने 'शक्ति की इच्छा' को प्रेरक तत्व माना, यह विचार शॉपेनहॉर के विचार के विपरीत था। नित्से के विचार में प्राणी जीवित रहने की आवश्यकता से ही प्रेरित नहीं होते हैं बल्कि वस्तुतः आगे बढ़ने और अपनी शक्ति को बढ़ाने के लिए शक्ति के उपयोग और इस प्रक्रिया में अन्य 'इच्छाओं को सम्मिलित करने की अधिक आवश्यकता से प्रेरित होते हैं। अतः नीत्से ने 'जीने की इच्छा को अर्थहीन माना जबकि 'शक्ति की इच्छा को ही प्रमुख माना।

प्रेरणा के रूप में शक्ति की इच्छा

नीत्से ने दावा किया कि 'सजीव प्राणी सबसे अधिक अपनी शक्ति के प्रदर्शन का प्रयास करता है – जीवन 'शक्ति की इच्छा' ही है।" नीत्से के लेखन में 'शक्ति की इच्छा' सतत् रूप से इच्छा करने वाले व्यक्ति से जुड़ी रहती है। अपने लेखन में, उन्होंने 'शक्ति की इच्छा' को जीवन के क्रियाकलापों को समझाने की मूल प्रेरणा बना दिया। 'शक्ति की इच्छा' को स्वयं को जीतने की इच्छा अथवा सरल शब्दों में स्वयं को श्रेष्ठ बनाने अथवा जो वह अब है उससे अधिक श्रेष्ठ बनाने की इच्छा की प्रेरणा के रूप में माना जाता है। स्वयं को श्रेष्ठ बनाने के लिए व्यक्ति में अपनी कमियों और बाहरी बाधाओं को दूर करने की क्षमता होनी चाहिए। "अर्थात यह एक संघर्ष और श्रेष्ठतम होने की प्रक्रिया है।" स्पष्टत इन्हें दूर करने में व्यक्ति को संतोष ओर प्रसन्नता मिलती है। बेहतर इंसान बनने के लिए, व्यक्ति में निश्चित रूप से इच्छा शक्ति होती है जिससे वो कमियों का सामना कर लेते हैं। बाधाओं को झेलने और उन पर विजय पाने में व्यक्ति को खुशी मिलती है। लेकिन यदि व्यक्ति सफल नहीं होते हैं, तो निश्चित रूप से वह असंतुष्ट अनुभव करते हैं। लेकिन क्या उसके बाद व्यक्ति इच्छा की प्रबलता का अनुभव नहीं करता है? संभवतः इच्छा अब और अधिक 'दृढ़ हो जाती है और यह चक्र चलता रहता है।